

यजुर्वेद

अध्याय ४०

अनुवाद कर्ता: सञ्जय मोहन मित्तल

Yajurveda

Chapter 40

Translated by: Sañjay Mohan Mittal

सारांश

चालीसवें अध्याय में दीर्घतमा ऋषि ईश्वर के सर्वव्यापी गतिरहित स्वरूप का वर्णन करते हुए ओ३म् को ईश्वर का प्राथमिक नाम घोषित करते हैं। आचार व्यवहार के मूल सिद्धान्तों का उपदेश देते हुए, सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखने की और जीवन के हर पल को अन्तिम पल की तरह जीने की सलाह देते हैं। अविनाशी प्रभु का ध्यान ही जन्म मृत्यु के चक्र से निकलने का मार्ग बताते हैं। इसके अतिरिक्त प्रभु की मूर्खों से दूरी एवम् विद्वानों से समीपता बताते हुए आत्मज्ञान की अवेहलना करने के दोष दिखाते हैं। अज्ञान से विद्या की ओर ले जाने वाले चक्र के महत्त्व को बताते हुए विद्या से उत्पन्न अहंकार के प्रति सचेत करते हैं।

अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः

प्रथम मन्त्र में ईश्वर के आस्तित्व और उसको जानने के बाद कैसा व्यवहार करें, यह बताया गया है।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३२ अक्षराणि । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥१॥

यजुः ४०:१

ईशा । वास्यम् । इदम् । सर्वम् । यत् । किम् । च । जगत्याम् । जगत् ॥

तेन । त्यक्तेन । भुञ्जीथाः । मा । गृधः । कस्य । स्वित् । धनम् ॥१॥

(ईशा) परम पिता परमेश्वर (इदम्) इस ब्रह्माण्ड में, (यत् किम्) जो भी (जगत्याम् जगत्) अति विशाल से लेकर अतिसूक्ष्म जगत हैं, (सर्वम्) उन सभी में (वास्यम्) निवास करते हैं और उनको आच्छादित भी करते हैं। (तेन) उस परमेश्वर द्वारा (त्यक्तेन) मनुष्यों के लिए छोड़े गए भोग्य को बिना लिप्त हुए, त्याग की भावना के साथ (भुञ्जीथाः) भोगो (च) और अन्य (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन की (गृधः) अभिलाषा (मा) मत करो।

दूसरे मन्त्र में वेदोक्त कर्म की उत्तमता दर्शाई गई है।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३३ अक्षराणि । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

यजुः ४०:२

कुर्वन् । एव । इह । कर्माणि । जिजीविषेत् । शतम् । समाः ॥

एवम् । त्वयि । न । अन्यथा । इतः । अस्ति । न । कर्म । लिप्यते । नरे ॥२॥

Synopsis

In the fortieth chapter, Sage Deerghatamaa has described the all pervading, omnipresent Supreme Being whose primary name is OM. Enumerating the basic code of conduct, he has advised everyone to desire to live for one hundred years and utilize one's lifetime to meaningfully perform God's work. He also advises that every moment of life should be lived as if it were the last. Keeping the indestructible God in our mind all the time, is the only way to attain salvation from the bondage of the cycle of life and death. While stating that God is very far from the ignorant and very close to the learned, he highlights the ills of ignoring universal knowledge. While describing the importance of the virtuous cycle leading from ignorance to illumination, he has cautioned everyone against developing an ego, which may result if the acquired knowledge is not properly implemented.

In the first mantra the sage describes the omnipresence of God and defines some basic rules of conduct.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

1. eeshaa vaasyamidaṁ sarvaṁ yatkiñcha jagatyaañ jagat,

tena tyaktena bhuñjeethaa maa gridhaḥ kasya sviddhanam.

Yajur 40.1

eeshaa vaasyam idam sarvam yat kim cha jagatyaam jagat,
tena tyaktena bhuñjeethaaḥ maa gridhaḥ kasya svit dhanam.

(eeshaa) **God (vaasyam) pervades and covers (sarvam) everything that exists (idam) here in this universe, (kim) whatever (yat) those entities may be, (jagatyaam) large celestial bodies (cha) or (jagat) smaller entities contained within an entity. (bhuñjeethaaḥ) Enjoy (tyaktena) with a feeling of detachment, whatever has been left for you (tena) by God and (maa) never (gridhaḥ) covet (kasya svit) someone else's (dhanam) wealth.**

In the second mantra the sage describes the importance of selfless actions.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 33, **chhandah** bhurig aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

2. kurvanneveha karmaaṇi jījeeviṣhechchhataṁ samaaḥ,

evan tvayi naanyatheto'sti na karma lipyate nare.

Yajur 40.2

kurvan eva iha karmaaṇi jījeeviṣhet shatam samaaḥ,
evam tvayi na anyathaa itaḥ asti na karma lipyate nare.

(इह) इस संसार में प्रसन्नतापूर्वक (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा रखते हुए (एव) केवल (कर्माणि) वेदोक्त कर्म (कुर्वन्) करो। (एवम्) और (त्वयि) तेरे (नरे) अपने स्वार्थवश (कर्म) कोई भी कर्म (न) न (लिप्यते) करने से (इतः अन्यथा) धर्म के मार्ग से भटकाव (न) नहीं (अस्ति) होता।

तीसरे मन्त्र में बताया गया है कि आत्मिक ज्ञान को न मानने वालों की क्या गति होती है।

दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। ३२ अक्षराणि। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।

ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३॥

यजुः ४०:३

असुर्याः। नाम। ते। लोकाः। अन्धेन। तमसा। आवृता इत्याऽवृताः॥

तान्। ते। प्रेत्येति प्रऽइत्य। अपि। गच्छन्ति। ये। के। च। आत्महन इत्यात्महनः। जनाः॥३॥

(ये) जो (जनाः) मनुष्य (तमसा) अज्ञान के (अन्धेन) अन्धकार से (आवृताः) ढके हुए हैं (च) और (के) कोई (आत्महनः) आत्मिक ज्ञान के विरुद्ध आचरण करने वाले हैं, (ते) वे (असुर्याः) दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि (नाम) नामों से जाने जाते हैं। (ते) वे (प्रेत्य) मृत्योपरान्त और (अपि) जीवित अवस्था में भी (तान्) इनही अन्धकारपूर्ण (लोकाः) लोको को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

आत्मिक उन्नति के उपाय पहले दो मन्त्रों में बताए गए हैं। इन उपायों और अन्य वेदोक्त कर्तव्यों के विरुद्ध आचरण करना ही अपनी आत्मा का हनन करना है। ईश्वर को किसी मूर्ति अथवा स्थान पर सीमित समझना, इन्द्रियों के वश में अन्धाधुन्ध भोग में लिप्त होना, किसी अन्य के धन पर गिद्ध दृष्टि डालना, सौ वर्ष से पहले ही जीने की चाह खो देना और अपना समय व जीवन व्यर्थ कामों में व्यतीत कर देना, यह उन आत्महनन करने वाले कर्मों के कुछ उदाहरण हैं।

चौथे मन्त्र में ईश्वर के साक्षात्कार के विषय में बताया गया है।

दीर्घतमा ऋषिः। ब्रह्म देवता। ४३ अक्षराणि। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्षत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥४॥

यजुः ४०:४

अनेजत्। एकम्। मनसः। जवीयः। न। एनत्। देवाः। आप्नुवन्। पूर्वम्। अर्षत्॥

तत्। धावतः। अन्यान्। अति। एति। तिष्ठत्। तस्मिन्। अपः। मातरिश्वा। दधाति॥४॥

Yajurveda chapter 40

(iha) In this World, (jijeeviṣhet) with a desire to happily live for (shatam) one hundred (samaaḥ) years, (kurvan) perform (eva) only (karmaaṇi) virtuous actions as sanctified in the Vedas (evam) and in order (itaḥ) to (na asti) remove (anyathaa) any diversions from the righteous path, (tvayi) you (na) should never (lipyate) be engaged (karma) in performing actions (nare) for selfish reasons.

In the third mantra the sage describes the fate of people who engage in self deprecating behavior by ignoring the divine knowledge.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, devataa aatmaa, vowels 32, chhandah aarṣhy anuṣṭup, svarah gaandhaarah.

**3. asuryyaa naama te lokaa'andhena tamasaavṛitaah,
taanste pretyaapi gachchhanti ye ke chaatmahano janaah.**

Yajur 40.3

asuryyaaḥ naama te
lokaaḥ andhena tamasaa aavṛitaah,
taan te pretya api gachchhanti
ye ke cha aatmahanah janaah.

(te) Those (janaah) humans (ye) whose (ke aatmahanah) conduct is contrary to what is sanctified in the Vedas (cha) and who are (aavṛitaah) covered in (andhena) darkness (tamasaa) of ignorance (naama) are called (asuryyaaḥ) demons; (te) they (pretya) on death (api) and even during life, (gachchhanti) go to (taan) those similar dark (lokaa) Worlds.

Some of the behaviors that accentuates one's spirituality and well being, are defined in the first two mantras. Any conduct that is contrary to what is sanctified in the Vedas, is a self-deprecating behavior. Thinking of God as limited to an idol or a place, getting engrossed in carefree consumption, setting a hawk eye on someone else's wealth or possessions, not having a desire to live for 100 years, wasting away time and life in mundane activities and getting distracted from the righteous path, would be some examples of the self deprecating behaviors.

In the fourth mantra the sage discusses the ways to perceive God.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, devataa brahma, vowels 43, chhandah nichṛid aarṣhee triṣṭup, svarah dhaivataḥ.

**4. anejadekam manaso javeeyo nainaddevaa'aapnuvan poorvamarṣhat,
taddhaavato'nyaanatyeti tiṣṭhattasminnapo maatarishvaa dadhaati.**

Yajuh 40.4

anejat ekam manasaḥ javeeyah
na enat devaaḥ aapnuvan poorvam arṣhat,
tat dhaavataḥ anyaan ati eti tiṣṭhat
tasmin apaḥ maatarishvaa dadhaati.

वह (एकम्) एकमात्र (अनेजत्) गतिरहित दृढ परमात्मा जो (मनसः) मन की गति से भी (जवीयः) तेज सभी स्थानों पर (पूर्वम्) पहले से ही (अर्षत्) विद्यमान है, (एनत्) वह (देवाः) दृष्टि आदि इन्द्रियों से (आप्नुवन्) प्राप्त (न) नहीं होता। (तत्) वह (तिष्ठत्) सर्वत्र स्थिर हो अपनी सर्वव्यापकता और विस्तार के कारण (धावतः) विषयों के पीछे भागती हुई (अन्यान्) इन्द्रियों का (अति एति) उल्लङ्घन कर जाता है। स्वयं भाररहित होकर भी (तस्मिन्) वह (मातरिश्वा) वायुमण्डल में (अपः) जल के भार को (दधाति) धारण करता है।

गति अथवा कम्पन करने की आवश्यकता तब पड़ती है जब किसी जीव या वस्तु को अपना स्थान बदल कर कहीं और जाना हो। ईश्वर तो सर्वव्यापी है और इस जगत और उससे भी परे ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ ईश्वर का जाना शेष हो तो फिर उसको गति करने की आवश्यकता ही क्या है। इससे यहीं निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर कम्पन रहित व गति रहित है; अर्थात् उसकी प्राकृतिक आवृत्ति शून्य है। भौतिकी विज्ञान के अनुसार अनुनाद के लिए दो वस्तुओं की प्राकृतिक आवृत्ति मिलना अत्यन्त आवश्यक है। इन्द्रियाँ तो हर समय इच्छाओं की पूर्ति के लिए भागती रहती हैं। उनका गति शून्य ईश्वर से अनुनाद असम्भव है। इसी कारण ईश्वर इन्द्रियों का विषय नहीं है। आँखें उसको देख नहीं सकती, कान उसको सुन नहीं सकते, नाक उसको सूँघ नहीं सकती, जिह्वा उसे चख नहीं सकती और त्वचा उसका स्पर्श नहीं कर सकती। और जिसको इन्द्रियाँ देख, सुन, सूँघ, चख व स्पर्श कर सकती हैं वह ईश्वर नहीं हो सकता।

पाँचवे मन्त्र में ईश्वर के बारे में विद्वानों और अविद्वानों के विचार बताए गए हैं। अज्ञानी ईश्वर को चलायमान समझ उसे सीमित रूप में पूजते हैं।

दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। ३२ अक्षराणि। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

यजुः ४०:५

तत्। एजति। तत्। न। एजति। तत्। दूरे। तत्। ऊँइत्यूँ। अन्तिके॥

तत्। अन्तः। अस्य। सर्वस्य। तत्। ऊँइत्यूँ। सर्वस्य। अस्य। बाह्यतः॥५॥

(तत्) वह (न) स्वयं न (एजति) गति करते हुए भी (तत् एजति) इस ब्रह्माण्ड में सबको चलायमान रखता है। अविद्वानों को (तत्) वह (दूरे) बहुत दूर प्रतीत होता है, परन्तु विद्वानों के (तत्) वह (अन्तिके) अत्यन्त समीप (उ) ही है। (तत्) वह (सर्वस्य) सबके के (अन्तः) अन्दर और (बाह्यतः) बाहर (उ) भी (अस्य) विद्यमान है।

(ekam) **The One**, (anejat) **unwavering motionless God**, who (arshat) **already exists** (poorvam) **everywhere before anyone can reach there mentally or physically and hence is considered** (javeeyah) **faster than** (manasah) **mind**; (enat) **that God** (na) **cannot be** (aapnuvam) **perceived through** (devaah) **senses**. **By virtue of his** (tishthat) **steadfast omnipresence and vastness**, (tat) **he is** (ati eti) **beyond** (anyaan) **the senses that are** (dhaavatah) **chasing the material desires**. (tasmin) **He even while being weightless himself**, (dadhaati) **holds all of** (apah) **the water in** (maatarishvaa) **the atmosphere**.

God does not need to move. Motion would be required for someone to go to a particular place where he/she is not currently present. God however is already present everywhere and there is no place, tiny or large, where he still needs to visit. Hence he is unwavering and motionless. In physics, we have learned that in order for two objects to resonate, their natural frequencies must be the same. God being unwavering has a zero frequency while the senses are always chasing desire. Hence the senses can never resonate with or perceive God. Eyes can't see him, ears can't hear him, nose can't smell him, tongue can't taste him and skin can't feel him. This also implies that anyone or anything that eyes can see, ears can hear, nose can smell, tongue can taste and skin can feel does not qualify to be God.

In the fifth mantra the sage discusses God's closeness to the learned and distance from the ignorant. Ignorant find it difficult to accept the omnipresence of God. They think of him as a being in motion and worship a limited form as the representation of God.

riṣhiḥ deerghatamaah, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarshy anuṣṭup, **svarah** gaandhaarah.

5. tadejati tannaijati tad doore tadvantike,

tadantarasya sarvasya tadu sarvasyaasya baahyatah.

Yajuḥ 40.5

tat ejati tat na ejati

tat doore tat u antike,

tat antah asya sarvasya

tat u sarvasya asya baahyatah.

(tat) **He** (na) **does not need to** (ejati) **move but** (tat) **he is** (ejati) **the causal force behind the movement of any entity**. (tat) **He** (doore) **seems very far to the ignorant but** (tat) (u) (antike) **is very close to the learned**. (tat) **He** (asya) **exists** (antarasya) **inside** (sarvasya) **everyone** (u) **as well as** (baahyatah) **outside** (sarvasya) **everyone**.

छठे मन्त्र में पुनः ईश्वर की सर्वव्यापकता के विषय में कहा गया है।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३१ अक्षराणि । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥६॥

यजुः ४०:६

यः । तु । सर्वाणि । भूतानि । आत्मन् । एव । अनुपश्यतीत्यनुपश्यति ॥

सर्वभूतेष्विति सर्वभूतेषु । च । आत्मानम् । ततः । न । वि । चिकित्सति ॥६॥

(यः) जो विद्वान् (आत्मन्) परमात्मा के अन्दर (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणियों व अप्राणियों को (अनुपश्यति) ध्यानदृष्टि से देखता है (च) और (तु) जो (सर्व) सब (भूतेषु) प्रकृत्यादि पदार्थों में भी (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) वह (वि चिकित्सति) भ्रम में (न) नहीं पड़ता। सातवें मन्त्र में यह बताया गया है कि सभी प्राणियों के साथ स्वयं अपने जैसा व्यवहार करना ही उचित है।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३१ अक्षराणि । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

यजुः ४०:७

यस्मिन् । सर्वाणि । भूतानि । आत्मा । एव । अभूत् । विजानत इति विजानतः ॥

तत्र । कः । मोहः । कः । शोकः । एकत्वमित्येकत्वम् । अनुपश्यत इत्यनुपश्यतः ॥७॥

(यस्मिन्) जो विद्वान् (सर्वाणि) सभी (भूतानि) प्राणीमात्र को परमात्मा के सहचारी जान अपने (एव) ही (आत्मा) आत्मतुल्य (अभूत्) मानते हैं, उस (एकत्वम्) एकमात्र परमेश्वर में (विजानतः) ध्यानदृष्टि से अद्वितीय भाव (अनुपश्यतः) देखने वाले (तत्र) उन योगियों को (कः) कैसा (मोहः) मोह और (कः) कैसा (शोकः) शोक ।

आठवें मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का विस्तृत वर्णन कर उसके उनही गुणों के कारण पूजा के योग्य बताया गया है।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ५० अक्षराणि । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।

कृविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

यजुः ४०:८

Yajurveda chapter 40

In the sixth mantra the sage again describes the omnipresence of God.

riṣhiḥ deerghatamaah, **devataa** aatmaa, **vowels** 31, **chhandah** nichṛid aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaarah.

**6. yastu sarvaani bhootaanyaatmannevaanupashyati,
sarva-bhooṭeṣhu chaatmaanana tato na vi chikitsati.**

Yajur 40.6

yaḥ tu sarvaani bhootaani
aatman eva anu-pashyati,
sarva-bhooṭeṣhu cha aatmaanam
tataḥ na vi chikitsati.

(*yaḥ tu*) **That learned person who** (*eva*) **definitely** (*anupashyati*) **perceives** (*sarvaani*) **the entire** (*bhootaani*) **creation** (*aatman*) **as a part of God** (*cha*) **and** (*aatmaanam*) **God inside** (*sarva*) **every** (*bhooṭeṣhu*) **being and non living thing** (*tataḥ*) **that person is** (*na*) **never** (*vi chikitsati*) **bothered by any disillusion.**

In the seventh mantra the sage advises to treat all beings as one would like his/her own self treated by others.

riṣhiḥ deerghatamaah, **devataa** aatmaa, **vowels** 31, **chhandah** nichṛid aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaarah.

**7. yasmintsarvaani bhootaanyaatmaivaabhoodvijaanataḥ,
tatra ko mohah kaḥ shoka'ekatvamanupashyataḥ.**

Yajuh 40.7

yasmin sarvaani bhootaani
aatmaa eva abhoot vijaanataḥ,
tatra kaḥ mohah kaḥ shokaḥ
ekatvam anu-pashyataḥ.

(*yasmin*) **Those learned humans who** (*abhoot*) **perceive** (*sarvaani*) **every** (*bhootaani*) **being as God's companion** (*aatmaa iva*) **and treat them as their own self, and** (*anu-pashyataḥ*) **visualize** (*ekatvam*) **the unparalleled qualities of that one God** (*vijaanataḥ*) **through meditation, (kaḥ) what is** (*mohah*) **attachment and (kaḥ) what is** (*shokaḥ*) **sorrow (tatra) to them!**

In the eighth mantra the sage details various abstract qualities of the God and declares that he is the only one to be worshiped because of those qualities.

riṣhiḥ deerghatamaah, **devataa** aatmaa, **vowels** 50, **chhandah** svaraad aarṣhee jagatee, **svarah** niṣhaadah.

**8. sa paryagaachchukramakaayamavranamasnaaviraṁ
shuddhamapaavidham,
kavirmaneeṣhee paribhooḥ svayambhooryaathaathyato'rthaan
vyadadhaachchhaashvateebhyaḥ samaabhyaḥ.**

Yajuh 40.8

सः । परि । अगात् । शुक्रम् । अकायम् । अव्रणम् । अस्नाविरम् । शुद्धम् । अपापविद्धमित्यपापविद्धम् ॥ कविः । मनीषी । परिभूरिति परिऽभूः । स्वयम्भूरिति स्वयम्ऽभूः । याथातथ्यत इति याथाऽतथ्यतः । अर्थान् । वि । अदधात् । शाश्वतीभ्यः । समाभ्यः ॥८॥

जो (परि) सब जगह (अगात्) गया हुआ, (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप (अकायम्) कायारहित, (अव्रणम्) छिद्ररहित, (अस्नाविरम्) कर्म बन्धनों से परे, (शुद्धम्) पवित्र, (अपापविद्धम्) पाप से दूर, (कविः) सर्वव्यापक, (मनीषी) सब जीवों की मनोवृत्ति जानने वाला, (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, (स्वयम्ऽभूः) अनादि, (शाश्वतीभ्यः) उत्पत्ति और विनाश से रहित, (वि) विशेष कर (याथाऽतथ्यतः) यथार्थ भाव से (समाभ्यः) सबके लिए (अर्थान्) वेदों के ज्ञान को (अदधात्) बनाने वाला, (सः) वही परमेश्वर उपासना के योग्य है ।

यदि पिछले मन्त्रों को समझने के बाद भी ईश्वर के स्वरूप के विषय में कोई शंका शेष हो तो उसका निवारण इस मन्त्र में कर दिया गया है । ईश्वर अनादि, अनन्त व कायारहित है । अर्थात् जिसकी जन्म व मृत्यु हुई और जो कभी भी सशरीर रहा, वह ईश्वर नहीं हो सकता ।

अगले छः मन्त्रों में दो चक्रों के बारे में बताया गया है; पहला अविद्या और विद्या का चक्र और दूसरा जीवन और मृत्यु का चक्र । इन चक्रों के एक पहलू को सत्य मान उसी में ही रम जाना मानव जीवन की सबसे बड़ी भूल है । इन चक्रों के दोनो पहलुओं को स्वीकार करते हुए एक पहलू से दूसरे पर जाने की कला ही मनुष्य को उन्नति व मोक्ष की ओर ले जा सकती है ।

नौवें मन्त्र में जीवन के भोगों में रमे रहने वाले अथवा मृत्यु को आत्मा का अन्त मानने वाले, दोनों प्रकार के मनुष्यों के अन्धकारमय जीवन के बारे में कहा गया है ।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३२ अक्षराणि । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्यां रताः ॥९॥

यजुः ४०:९

अन्धम् । तमः । प्र । विशन्ति । ये । असम्भूतिमित्यसम्भूतिम् । उपासत इत्युपऽआसते ॥

ततः । भूयऽइवेति भूयऽइव । ते । तमः । ये । ऊँऽइत्यूँ । सम्भूत्यामिति सम्भूत्याम् । रताः ॥९॥

(ये) जो लोग (असम्भूतिम्) मृत्यु को आत्मा का अन्त मान उसकी (उपऽआसते) उपासना करते हैं वे (अन्धम् तमः) अन्धकारमय जीवन (प्र विशन्ति) बिताते हैं और (ये) जो (सम्भूत्याम्) जीवन को ही सब कुछ मान सन्सारिक भोग विलास में (रताः) डूबे रहते हैं (ते) वे (उ ततः भूयऽइव) उससे भी अधिक (तमः) अन्धकार में जीते हैं ।

Yajurveda chapter 40

sa pari agaath shukram akaayam avraṇam asnaaviram shuddham apaapa-viddham,
kaviḥ maneeṣhee pari-bhooh svayam-bhooh
yaathaa-tathyataḥ arthaan vi adadhaat shaashvateebhyaḥ samaabhyaḥ.

The supreme being who is (agaath) already present (pari) all over, is (shukram) pure, (akaayam) without any physical body, (avraṇam) without any holes i.e. contiguous, (asnaaviram) beyond all attachments to the actions, (shuddham) devoid of any impurities, (apaapa-viddham) distant from all sins, (kaviḥ) omnipresent, (maneeṣhee) all knowing, (paribhooh) destroyer of evil, (svayambhooh) forever existing and never born, (shaashvateebhyaḥ) indestructible, (vi adadhaat) provider of the (yaathaa tathyataḥ) true (arthaan) knowledge through Vedas to (samaabhyaḥ) everyone; (sa) he is the only one who should be worshipped.

This mantra removes any doubts on God's characteristics that may remain after studying the previous mantras. God is eternal, without any beginning or an end, is without any form and does not have a physical body. Hence, anyone in our history, who was born, has experienced death or had a physical body, can not be classified as God.

The next six mantras describe two cycles, the cycle of ignorance and knowledge and the cycle of life and death. Those who acknowledge and focus only on one aspect of these cycles can never realise their full potential. Recognising these aspects and seamlessly moving back and forth between them shall lead one onto the path of nirvaṇa.

In the ninth mantra the sage advises to look beyond the material pleasure and death and pray only to the God who is truly worthy of our prayers.

riṣiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svaraḥ** gaandhaaraḥ.

**9. andhantamaḥ pra vishanti ye'sambhootimupaasate,
tato bhooya'iva te tamo ya'u sambhootyaam rataaḥ.**

Yajuh 40.9

andham tamaḥ pra vishanti
ye asam-bhootim upaasate,
tataḥ bhooyaḥ iva te tamaḥ
ye u sambhootyaam rataaḥ.

(ye) Those who (upaasate) view (asambhootim) death as the end of the soul (pra vishanti) remain in (andhantamaḥ) darkness. And (ye) those who treat (sambhootyaam) life as ultimate and remain (rataaḥ) engrossed in the material pleasures, (te) they (bhooyaḥ) are (iva) even in a (tataḥ u) greater (tamaḥ) darkness.

दसवें मन्त्र में कहा गया है कि जीवन के भोगों में रमे रहने वाले अथवा मृत्यु को आत्मा का अन्त मानने वाले, दोनों के भिन्न परिणाम हैं।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३२ अक्षराणि । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।

इति शुश्रुम् धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥१०॥

यजुः ४०:१०

अन्यत् । एव । आहुः । सम्भवादिति सम्भवात् । अन्यत् । आहुः । असम्भवादित्यसम्भवात् ॥

इति । शुश्रुम् । धीराणाम् । ये । नः । तत् । विचक्षिरे इति विचक्षिरे ॥१०॥

(धीराणाम्) विद्वानों के (तत् विचक्षिरे) व्याख्यानो में (नः) हम (इति) यही (शुश्रुम्) सुनते आए हैं कि (ये) वह (सम्भवात्) जीवन को सब कुछ मानने के परिणाम (अन्यत्) कुछ (आहुः) बताते हैं और (असम्भवात्) मृत्यु को आत्मा के अन्त मानने के परिणाम (अन्यत्) कुछ और (एव) ही (आहुः) बताते हैं ।

ग्यारहवें मन्त्र में जीवन और मृत्यु चक्र का ज्ञान है ।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३२ अक्षराणि । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

यजुः ४०:११

सम्भूतिमिति सम्भूतिम् । च । विनाशमिति विनाशम् । च । यः । तत् । वेद । उभयम् । सह ॥

विनाशेनेति विनाशेन । मृत्युम् । तीर्त्वा । सम्भूत्येति सम्भूत्या । अमृतम् । अश्नुते ॥११॥

(सम्भूतिम्) जीवन (च) और (विनाशम्) मृत्यु (उभयम्) दोनों (सह) साथ साथ हैं । जन्म के साथ मृत्यु शुरु हो जाती है और मृत्यु के साथ ही जन्म की तैयारी, (तत्) यह (वेद) जान लेने वाला (यः) मनुष्य (सम्भूत्या) जन्म (विनाशेन मृत्युम्) मृत्यु चक्र से (तीर्त्वा) तर (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त होता है ।

बारहवें मन्त्र में अविद्या अथवा विद्या के अहंकार, इन दोनों से होने वाली हानि के विषय में बताया गया है ।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३१ अक्षराणि । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते ।

ततो भूयऽइव ते तमो यऽऽविद्यायां रताः ॥१२॥

यजुः ४०:१२

Yajurveda chapter 40

Tenth mantra about different outcomes to being engrossed in the material pleasure and viewing death as the end.

riṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

**10. anyadevaahuḥ sambhavaadanyadaahurasambhavaat,
iti shushruma dheeraaṇaāñ ye nastadvichachakṣhire.**

Yajuḥ 40.10

anyat eva aahuḥ sam-bhavaat
anyat aahuḥ asambhavaat,
iti shushruma dheeraaṇaam
ye naḥ tat vi-chachakṣhire.

(naḥ) **We** (*shushruma*) **hear from the** (*vi-chachakṣhire*) **discourses of the** (*dheeraaṇaam*) **learned; (ye) they** (*aahuḥ*) **say** (*tat iti*) **that** (*sambhavaat*) **being engrossed in the material pleasure brings** (*anyat*) **different results and** (*asambhavaat*) **believing death as the end of the soul, brings** (*anyat*) **different results** (*eva*) **altogether.**

In the eleventh mantra the sage touches upon the cyclicity of life and death.

riṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

**11. sambhootiñ cha vinaashañ cha yastadvedobhayaṁ saha,
vinaashena mṛityun teertvaa sambhootyaa'mṛitamashnute.**

Yajuḥ 40.11

sam-bhootim cha vinaasham cha
yaḥ tat veda ubhayam saha,
vinaashena mṛityum teertvaa
sam-bhootyaa amṛitam ashnute.

(*sambhootim*) **Life** (*cha*) **and** (*vinaasham*) **death** (*ubhayam*) **both go** (*saha*) **hand in hand. With birth the process of aging and death starts and with death starts the process of new incarnation. (yaḥ) That person who** (*veda*) **understands** (*tat*) **this cyclicity, is** (*teertvaa*) **not bothered by the** (*vinaashena mṛityum*) **ups and downs of** (*sambhootyaa*) **life and** (*ashnute*) **attains** (*amṛitam*) **nirvaṇa.**

In the twelfth mantra the sage advises about the harm from the ignorance or the improper use of knowledge.

riṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 31, **chhandah** nichṛid aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

**12. andhantamaḥ pra vishanti ye'vidyaamupaasate,
tato bhooya'iva te tamo ya'u vidyaayaam rataaḥ.**

Yajuḥ 40.12

अन्धम् । तमः । प्र । विशन्ति । ये । अविद्याम् । उपासतु इत्युपऽआसते ॥

ततः । भूयःऽइवेति भूयःऽइव । ते । तमः । ये । ऊँऽइत्यूँ । विद्यायाम् । रताः ॥१२॥

(ये) जो लोग (अविद्याम्) अज्ञान में (उपऽआसते) रहते हैं और उससे बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, वह (अन्धम् तमः) अन्धकार में (प्र विशन्ति) जीते हैं और (ये) वह ज्ञानी जो (विद्यायाम्) विद्या प्राप्ति से (रताः) अहंकारी हो जाते हैं (ते) वह (ततः) इससे (भूयःऽइव उ) भी अधिक (तमः) अन्धकार मय जीवन जीते हैं ।

तेरहवें मन्त्र में अज्ञानमय जीवन और ज्ञान के दुरुपयोग, दोनों ही की हानि के विषय में बताया गया है ।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३२ अक्षराणि । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः ।

इति शुश्रुम् धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥१३॥

यजुः ४०:१३

अन्यत् । एव । आहुः । विद्यायाः । अन्यत् । आहुः । अविद्यायाः ॥

इति । शुश्रुम् । धीराणाम् । ये । नः । तत् । विचक्षिरे इति विचक्षिरे ॥१३॥

(धीराणाम्) विद्वानों के (तत् विचक्षिरे) व्याख्यानों में (नः) हम (इति) यही (शुश्रुम्) सुनते आए हैं कि (ये) वह (अविद्यायाः) अज्ञान में जीने के परिणाम (अन्यत्) कुछ (आहुः) बताते हैं और (विद्यायाः) विद्या के दुरुपयोग अथवा उसको आचरण में न लाने के परिणाम (अन्यत्) कुछ और (एव) ही (आहुः) बताते हैं ।

चौदहवें मन्त्र में अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने का लाभ बताया गया है ।

दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । ३० अक्षराणि । स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४॥

यजुः ४०:१४

विद्याम् । च । अविद्याम् । च । यः । तत् । वेद । उभयम् । सह ॥

अविद्यया । मृत्युम् । तीर्त्वा । विद्यया । अमृतम् । अश्नुते ॥१४॥

(यः) यह (वेद) जानो कि (अविद्याम्) अज्ञान (च) और (विद्याम्) ज्ञान (उभयम्) दोनों ही (सह) एक चक्र में साथ साथ हैं । अज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु जब तक वह ज्ञान जीवन में लागू न करे तब तक वह अज्ञानी ही रहता है । ज्ञान को जीवन में लागू करने के बाद उसको अपनी अज्ञानता का और अधिक भान होता है और वह ज्ञान प्राप्ति के लिए अधिक परिश्रम करता है । (तत्) इस (अविद्यया) अज्ञान के (मृत्युम्) विनाश से (विद्यया) ज्ञान की और जाने के सुचक्र से मनुष्य (तीर्त्वा) बन्धनों से तर (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त होता है ।

Yajurveda chapter 40

andham tamaḥ pra vishanti
ye avidyaam upaasate,
tataḥ bhooyaḥ iva te tamaḥ
ye u vidyaayaam rataaḥ.

(ye) Those who (upaasate) prefer to stay (avidyaam) in ignorance, (pra vishanti) live their life (andham tamaḥ) in darkness; however, (ye) those who (rataaḥ) become egotistical (vidyaayaam) after attaining knowledge, (te) they (bhooyaḥ) lead (tataḥ) into (iva) even (u) greater (tamaḥ) darkness.

In the thirteenth mantra the sage advises about the harm from the ignorance or the improper use of knowledge.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

**13. anyadevaahurvidyaayaa'anyadaahuravidyaayaah,
iti shushruma dheeraaṇaāñ ye nastadvichachakṣhire.**

Yajuḥ 40.13

anyat eva aahuḥ vidyaayaah
anyat aahuḥ avidyaayaah,
iti shushruma dheeraaṇaam
ye naḥ tat vi-chachakṣhire.

(naḥ) We (shushruma) hear from the (vi-chachakṣhire) discourses of the (dheeraaṇaam) learned; (ye) they (aahuḥ) say (tat iti) that (avidyaayaah) living in ignorance brings (anyat) different results and (vidyaayaah) misuse of knowledge or failure to practically use the knowledge in one's own life brings (anyat) different results (eva) altogether.

In the fourteenth mantra the sage discusses the benefit of moving from ignorance to enlightenment.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 30, **chhandah** svaraad aarṣhy uṣṇik, **svarah** ṛiṣhabhaḥ.

**14. vidyaañ chaavidyaañ cha yastadvedobhayañ saha,
avidyayaa mṛityun teertvaa vidyayaa'mṛitamashnute.**

Yajuḥ 40.14

vidyaam cha avidyaam cha yaḥ tat veda ubhayam saha,
avidyayaa mṛityum teertvaa vidyaya amṛitam ashnute.

(ubhayam) Both (avidyaam) ignorance (cha) and (vidyaam) enlightenment (saha) coexist in a cycle. Ignorant may attain knowledge, however, ignorance persists until that knowledge is properly implemented in one's life. After implementation only (yaḥ) one (veda) realizes that there is a need to learn more. (tat) This virtuous cycle, in which (vidyayaa) enlightenment highlights the need for further enlightenment, leads to (teertvaa) freedom from (mṛityum) bondage of (avidyayaa) ignorance and (ashnute) attainment of (amṛitam) nirvaṇa.

पन्द्रहवें मन्त्र में सलाह दी गई है कि अपने जीवन के हर क्षण को अपने अन्तिम क्षण की तरह जियो।
दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। ३० अक्षराणि। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तु* शरीरम्।

ओ३म् क्रतो'स्मर। क्लिबे स्मर। कृत* स्मर ॥१५॥

यजुः ४०:१५

वायुः। अनिलम्। अमृतम्। अथ। इदम्। भस्मान्तमिति भस्मऽअन्तम्। शरीरम्॥

ओ३म्। क्रतो इति क्रतो'। स्मर। क्लिबे। स्मर। कृतम्। स्मर ॥१५॥

हे (क्रतो) कर्मशील मनुष्य! (अथ) निरन्तर प्रत्येक (वायुः अनिलम्) श्वास में (ओ३म्) ईश्वर के नाम का (स्मर) स्मरण कर, (क्लिबे) ईश्वर द्वारा प्रदित सामर्थ्य का (स्मर) स्मरण कर, अपने (कृतम्) किए हुए कर्मों का (स्मर) स्मरण कर। यह स्मरण मात्र अन्तिम समय में ही करने के लिए नहीं है। (इदम्) इस (शरीरम्) शरीर की सत्ता का (अन्तम्) अन्त (भस्म) भस्म में है परन्तु आत्मा (अमृतम्) अमर है।

सोलहवें मन्त्र में प्रार्थना है कि प्रभु हमें बुराईयों से दूर कर धर्म के अनुसार ज्ञान और धन प्राप्त कराइये।
दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। ४३ अक्षराणि। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अग्ने नय'सुपथा' रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥१६॥

यजुः ४०:१६, यजुः ५:३६, यजुः ७:४३, ऋग् १:१८९:१

अग्ने'। नय'। सुपथेति' सुपथा'। राये। अस्मान्। विश्वानि। देव। वयुनानि। विद्वान्॥

युयोधि। अस्मत्। जुहुराणम्। एनः'। भूयिष्ठाम्। ते। नमऽउक्तिमिति नमऽउक्तिम्। विधेम ॥१६॥

हे (देव) दिव्य (अग्ने) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर! हम (विधेम) विधिपूर्वक (उक्तिम्) प्रशंसाओं द्वारा (ते) आपको (भूयिष्ठाम्) बार-बार (नमः) नमन करते हैं। (विद्वान्) सब कुछ जानने वाले प्रभु (अस्मत्) हम लोगों से (जुहुराणम्) कुटिलतारूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिए। (अस्मान्) हमें (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) ज्ञान और (राये) धन (नय) प्राप्त कराइये।

सतरहवें मन्त्र में, सोलहवें मन्त्र की प्रार्थना का उत्तर देते हुए, परमात्मा ने अपना नाम ओ३म् बताया है।
दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। ३२ अक्षराणि। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥

यजुः ४०:१७

Yajurveda chapter 40

In the fifteenth mantra the sage advises to live every moment of one's life as if it were the last.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 30, **chhandah** svaraad aarṣhy uṣṇik, **svarah** ṛiṣhabhaḥ.

**15. vaayuranilamamṛitamathedam bhasmaantaṁ shareeram,
o3m krato smara, klibe smara, kṛitaṁ smara.**

Yajur 40.15

vaayuh anilam amṛitam atha idam

bhasma-antam shareeram,

o3m krataḥ smara klibe smara kṛitam smara.

O (krato) doer of deeds! With every (vaayuh anilam) breath, (atha) continuously (smara) think of (o3m) God's name, (smara) think of (klibe) the bounties God has provided to you and also (smara) think of your own (kṛitam) deeds. These thoughts are not to be left for just the last breadth alone. (idam) This (shareeram) physical body (antam) ends in the form of (bhasma) ashes however the soul is (amṛitam) deathless.

In the sixteenth mantra the sage offers a prayer to God to remove the evil tendencies from us and to help us obtain righteous knowledge and wealth.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 43, **chhandah** nichṛid aarṣhee triṣṭup, **svarah** dhaivataḥ.

**16. agne naya supathaa raaye'asmaan vishvaani deva vayunaani vidvaan,
yuyodhyasmajjuhuraanameno bhooyiṣṭhaan te nama'uktim
vidhema.**

Yajuh 40.16, Yajuh 5:36, Yajuh 7:43, Ṛig 1:189:1

agne naya su-pathaa raaye asmaan

vishvaani deva vayunaani vidvaan,

yuyodhi asmat juhuraanam enaḥ

bhooyiṣṭhaam te namaḥ uktim vidhema.

O (deva) Divine (agne) source of all illumination! (bhooyiṣṭhaam) Repeatedly (vidhema) with devotion we (uktim) sing (te) your praises and (namaḥ) bow to you. O (vidvaan) Omniscient God! Please (yuyodhi) take away (asmat) from us the (juhuraanam) tendencies (enaḥ) to transgress your laws. Guide us on (supathaa) the righteous path so that (asmaan) we can (naya) attain (vishvaani) all of (vayunaani) the knowledge and (raaye) the wealth.

In the seventeenth mantra the sage provides God's response to the prayers in the sixteenth mantra. God establishes Om as his primary name.

ṛiṣhiḥ deerghatamaaḥ, **devataa** aatmaa, **vowels** 32, **chhandah** aarṣhy anuṣṭup, **svarah** gaandhaaraḥ.

**17. hiraṇmayena paatreṇa satyasyaapihitam mukham,
yo'saavaaditye puruṣhaḥ so'saavaham, o3m kham brahma.**

Yajur 40.17

यजुर्वेद अध्याय ४०

हिरण्मयेन॑ । पात्रेण॑ । सत्यस्य॑ । अपिहितमित्यपि॑ऽहितम् । मुखम्॑ ॥

यः । असौ । आदित्ये । पुरुषः । सः । असौ । अहम् ॥ ओ३म् । खम् । ब्रह्म ॥१७॥

(हिरण्मयेन) ज्योति का स्वर्णिम स्रोत, (पात्रेण) जगत का प्रमुख, (सत्यस्य) अविनाशी, (अपिऽहितम्) सबका रक्षाकवच, (मुखम्) शब्द का स्रोत (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) सौरमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है, (सः) वह (असौ) परोक्षरूप में (खम्) व्यापक (ब्रह्म) परमात्मा (अहम्) मैं ही हूँ । (ओ३म्) मुझे ओ३म् नाम से जानो ।

इस मन्त्र का एक और अर्थ हो सकता है । एक ढके हुए स्वर्णिम बर्तन में सत्य छिपा है। वह बर्तन हमारा अन्तःकरण ही है । सत्य को पहचानने के लिए हमें ईश्वर के स्वरूप को जानना होगा ।

Yajurveda chapter 40

hiraṇmayena paatreṇa
satyasya api-hitam mukham,
yaḥ asau aaditye puruṣhaḥ saḥ asau aham,
o3m kham brahma.

(asau) That (hiraṇmayena) source of all illumination, (paatreṇa) prime entity of the universe, (satyasya) timeless, (apihitam) protector and (mukham) source of all sound, (yaḥ) who is also (puruṣhaḥ) the supreme lord of (aaditye) the solar system, (aham) I (saḥ) am (asau) that (brahma) lord of (kham) the vast universe. (o3m) Know me by the name of OM.

Another translation of this mantra would be: The truth is hidden in a covered golden vessel. This vessel is nothing but our own conscience. In order to expose this hidden truth we need to first realize the true nature of God.